AD EDUXIAN JOURNAL
A Quarterly Multidisciplinary Blind Peer Reviewed & Refereed Online International Journal
Google Scholar Indexing PIF: 1.048(I2OR), 3.125 (IIFS) & 3.8(SJIF)
Vol (3), Issue (3), July-September 2026 ISSN: 3048-7951

हाशिए का समाज : भाषा एवं साहित्य

संतोष कुमार[1]

DOI : http://doi.org/10.5281/zenodo.22099624
Review: 09/07/2026 Acceptance: 11/07/2026 Publication: 25/08/2026

शोध सार:- यह आलेख 'हाशिए का समाज : भाषा और साहित्य' हाशियाकृत समुदायों के भाषा और साहित्य के परिपेक्ष में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह समाज सदियों से मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित रहा है।समाज में व्याप्त वर्चस्ववादी शक्तियों ने इनके भाषा और साहित्य को मुख्यधारा के साहित्य में उचित स्थान नहीं दिया, जबकि इनकी भाषा में समाज के सभी प्रतिमान विद्यमान है जिस पर चलकर व्यक्ति ने समाज का वर्तमान स्वरूप प्राप्त किया है। इसके जीवंत उदाहरण दलित, आदिवासी, स्त्री लेखन में दिखाई देते हैं।

शब्द संकेत :- वर्चस्ववादी, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, स्वतंत्रता, हाशिए, अस्मिता प्रतिरोध।

हाशिए का समाज : भाषा एवं साहित्य: जब किसी छोटे या बड़े समूह के सदस्यों को किसी अन्य छोटे या बड़े वर्चस्ववादी समूहों के द्वारा उनके सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता पर पूर्ण या आंशिक रूप से अधिकार कर उनको मानवीय मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित कर दिया जाता है, तब ऐसे समूह को 'हाशिए का समाज' कहा जाता है। इस समाज को किसी भी प्रकार का संवैधानिक और असंवैधानिक अधिकार नहीं प्राप्त होता है। यह समाज अपनी छोटी से छोटी जरूरतों के लिए वर्चस्ववादी समूहों पर निर्भर होकर रह जाता है। इस वर्चस्ववादी समूहों ने छल, कपट एवं शक्ति के बल पर धर्म, कानून, शिक्षा, व्यापार, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था को अपने हित के अनुसार ऐसे डालने का कार्य किया जिससे वर्चस्व को जायज सिद्ध किए जाने के साथ-साथ पीढ़ी-दर-पीढ़ी बनाएँ व बढ़ाएँ भी रखा जाए। इस बनाएँ व बढ़ाएँ रखने की मानसिकता ने ही सामाजिक अधिकार को समान रूप से सभी वर्गों में कायम होने में एक बड़ी सामाजिक असमानता को जन्म दिया। इसी सामाजिक असमानता ने देश के लोगों के हृदय को बाँट दिया और समाज वर्गों में विभक्त होकर रह गया। वैदिक काल से लेकर आज तक के साहित्य में केवल सत्ता संपन्न वर्ग का बढ़ा चढ़ाकर वर्णन वर्णित किया जाता रहा है और यथार्थ को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करना अपना धर्म-कर्म समझते हैं। इतिहास का यथार्थ स्वरुप अहम की भावना से प्रेरित है। जिसके चलते उसका वास्तविक स्वरूप सत्य से दूर है। इस संबंध में उदयप्रकाश लिखते हैं कि- **"इतिहास असल में सत्ता का एक राजनीतिक दस्तावेज होता है... जो वर्ग जाति या नस्ल सत्ता में होती है वह अपने हितों के अनुसार इतिहास को निर्मित करता है। इस देश और समाज का इतिहास अभी लिखा जाना बाकी है।"**[1] इसमें केवल राजा-महाराजा, पुरोहित, ब्राह्मण, सत्ताधारी इत्यादि का इतिहास, दर्शन, धर्म एवं संस्कृति का वर्णन मिलता है जबकि अन्य समाज के इतिहास, दर्शन, धर्म, भाषा एवं संस्कृति का वर्णन न के

[1] संतोष कुमार, ग्राम-बरौना, पोस्ट-किछौछा, जिला-अंबेडकर नगर, पिन कोड-224155, उत्तर प्रदेश, इंडिया|

बराबर मिलता है। हाशिए के समाज के अंतर्गत स्त्री, आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक इत्यादि आते हैं। ये सभी कलाप्रेमी, पर्यावरण प्रेमी, चिकित्सा की प्राकृतिक पद्धति, संगीत, विज्ञान इत्यादि कलाओं के अच्छे जानकार होने के साथ ही श्रम प्रधान लोगों का समुदाय होता है।

हाशियाकृत लोगों की भाषा, समाज एवं संस्कृति को समझने के लिए उनकी साहित्यिक कृतियाँ ही उनके साक्ष्य हैं। भाषा और संस्कृति का संबंध अटूट होता है। भाषा के द्वारा ही मनुष्य अपने विचारों को अभिव्यक्ति करता है। भाषा विचार विनिमय का माध्यम ही नहीं बल्कि वह समाज की पहचान है। भाषा के द्वारा ही बुद्धि, विवेक, कला, सामाजिक संबंध, राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक संबंध और सांस्कृतिक सरोकारों का निर्माण होता है। भाषा का निर्माण समाज में होता है और संस्कृति का निर्माण भी समाज में ही होता है। इन दोनों के केंद्र बिंदु में मनुष्य होता है। अतः समाज के बिना संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती है इसलिए किसी संस्कृति के लिए समाज का होना अति अनिवार्य है। संस्कृति के अंतर्गत रीति- रिवाज, खान-पान, वेशभूषा इत्यादि का समावेश माना जा सकता है। इस प्रकार पूरे सामाजिक संरचना की झलक साहित्य में विद्यमान है इसलिए 'साहित्य समाज का दर्पण है' कहा जाता है। साहित्य मनुष्य के कल्याण की बात करता है। उसके उत्थान और विकास की बात करता है। साहित्य समाज में वैचारिक परिवर्तन लाता है।

दलित वर्ग की साहित्यिक कृतियाँ ही इनके पहचान को मुखरित कर रही है। भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, छुआछूत, धार्मिक पाखंड, अंधविश्वास, अंधश्रद्धा व्याप्त है जिसके चलते दलित समाज सामाजिक रूढ़ियों के बीच पिस्ता रहा है। उसका शोषण कभी धर्म के नाम पर तो कभी कर्म के नाम पर किया जाता रहा है। भारतीय समाज में व्याप्त दलितों के प्रति विसंगतियाँ, कुरीतियाँ, विषमताएँ एवं अमानवीयता है। भारतीय समाज में विद्यमान विसंगतियाँ और अव्यवस्था, ऊँची- नीची, जाति- प्रथा, अहंभाव, संकीर्ण सोच, ब्राह्मणवादी मानसिकता, धार्मिक पाखंड इत्यादि की ओर इशारा करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि- **"सामाजिक संरचना में अनदेखा, अनचिन्हा एक ऐसा संसार है जो कहीं न कहीं मानवीय रिश्तो, संवेदनाओ को तार-तार कर देता है"।**[2] इनकी कहानी 'छतरी' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस कहानी में ग्रामीण परिवेश की झलक के साथ गाँव में व्याप्त संसाधनों के अभाव एवं सुविधाओं से जूझते व्यक्ति की मानसिकता की पड़ताल की गई है। इसमें असुविधाओं और विश्वासों से जूझते लोगों के निराशा, हताशा, भूख-प्यास एवं बेरोजगारी का वर्णन है। कहानी आम जनता को सोचने पर मजबूर करती है कि विकास के नाम पर करोड़ों खर्च होने के बावजूद भी दलित बस्तियों का हाल खट्टा क्यों है? कहानी बाल मनोविज्ञान को समझने में भी अहम भूमिका निभाती है। कहानीकार ने लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि बच्चे का मन कोरे कागज के समान होता है। बच्चा बचपन में जिस वातावरण में रहता है उस पर वैसा प्रभाव पड़ जाता है और चाहे बच्चे अवर्ण जाति के हो या फिर दलित वर्ग के बच्चे, सभी की भावनाएँ, इच्छाएँ, जिज्ञासाएँ एक जैसी ही होती हैं। उनके खेलने का तरीका एक जैसा ही होता है। बच्चों को धर्म और कर्मकांड से कोई मतलब नहीं होता है। बच्चे मस्त होकर अपने कार्य को अंजाम देते हैं। यदि कबीर के शब्दों में इसे व्यक्त करे तो- **"हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या"** कहानी

की शुरुआत मनोरम प्राकृतिक ग्रामीण परिवेश से होता है। ऐसा ग्रामीण परिवेश जिसे केवल कहानी में पढ़ा जा सकता है। चित्रों, फिल्मों, संग्रहालय में देखा जा सकता है लेकिन उसका वास्तविक स्वरुप बिगड़ गया है। जाति, धर्म, संप्रदाय, पाखंड, लालच, छल इत्यादि ने आपसी सौहार्द को बिगाड़ दिया है। इसका प्रमाण ओमप्रकाश वाल्मीकि 'चिड़ीमार' कहानी की पात्र सुनीता के साथ हो रहे अमानवीय व्यावहारों में दिखाई देता है। यथा- **"कहीं शिक्षा अधूरी है कह कर टाल दिया जाता तो कहीं भाषा बाधक बन जाती। कहीं क्षेत्रीयता तो कहीं जाति के कारण निराश होना पड़ता कहीं लड़की होना अभिशाप बनता तो कहीं एस.सी. होने के दंस अपराध बोध से भर देता था।$_3$"**

युवा वर्ग अंतरजातीय विवाह को लेकर किसी संशय में नहीं नजर आ रहा है लेकिन पुरानी पीढ़ी जाति के भँवर में फँसी हुई दिखाई देती है। सामाजिक बँधन, पुरानी एवं रुढ़ परंपराएँ, धार्मिक एवं सामाजिक आस्थाओं के बँधन को उच्च वर्ग बनाए रखना चाहता है। वह चाहता है कि जो जैसा है, वैसा ही बना रहे, जिससे समाज में वर्ण व्यवस्था कायम रहे। सदियों से सहते अत्याचार और अपमान के दर्द ने उनके मन मस्तिष्क को ऐसे मथ दिया है कि वह आज सवर्णों के बीच अपने को खुलकर प्रदर्शित करने में झिझक महसूस करते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि जाति, अपमान और व्यवहार, पाखंड, आडंबर का रूप आज भी संस्थानों, कार्यालयों, स्कूलों एवं सार्वजनिक क्षेत्रों में देखा जा सकता है। दलित वर्ग शिक्षा, रोजगार, व्यापार को हासिल करें लेकिन साथ-साथ उसे हीन भावना की ग्रंथी से बाहर निकलना होगा, तभी समाज में अपनी एक मुकम्मल जगह बना पाएगा। उसे अपनी जाति, अपनी भाषा, अपने समाज और संस्कृति को लेकर सम्मान, स्वाभिमान, वीरता का भाव रखना चाहिए न की हीनता का भाव।

संस्कृति और परंपरा का गुणगान करने वाले, मानवता की बात करने वाले हिंदूवादी, असल में किस प्रकार हिंदू रीति-रिवाज और परंपराओं, संस्कृतियों, वर्ण व्यवस्था को श्रेष्ठ एवं धार्मिक शोषण का खेल समाज में खेल रहे हैं? इस बात का अंदाजा समाज में हो रही घटनाओं से लगाया जा सकता है। सलाम की प्रथा, जूठन की प्रथा जैसी प्रथा सामाजिक संबंधों को कमजोर कर रही है। दलित समाज को जब हिंदू समाज ने अपने मंदिरों, रीति रिवाजों से निष्कासित कर दिया तब दलितों ने अनेक नए देवी-देवताओं का सृजन किया। डॅक्टर तुलसीराम कृत 'मुर्दहिया' में दलित देवताओं के बारे में लिखते है कि- **"हमारे गाँव में भी कमरिया माई और डीह बाबा ऐसे ही देवी देवता थे जिनकी पूजा दलित करते थे। दलित वर्ग सदैव से अभावग्रस्त जीवन यापन करता रहा है। उन को शिक्षा, रोजगार, व्यापार से वंचित किया जाता रहा है। उनके पास रहने को घर नहीं है उनकी बस्तियाँ अधिकतर दक्षिण दिशा में ही बताई गई है क्योंकि ऐसा माना जाता था कि यदि कोई बड़ी बीमारी आती है तो वह दक्षिण दिशा से ही आती है लेकिन वर्तमान सामाजिक संरचना में भी कोई बदलाव नहीं दिखाई देता है। शिक्षा के अभाव में अंधविश्वास के भँवर में फँस कर रह गए हैं। हमारे पास गाँव में जमीन जायदाद के नाम पर कुछ ना था। घूरे से सटी कच्ची मढ़ेया ही हमारी एकमात्र निधि थी जिसे हम अपना घर कहते थे। गाँव में बिरादरी के सभी लोगों का यही हाल था।$_4$"**

समाज में दलित स्त्रियाँ दोहरी मानसिक शोषण का शिकार हो रही है। जहाँ एक तरफ अपनी जाति का दंश झेल रही है तो वहीं दूसरी तरफ पुरुष सत्तात्मक समाज के रवैए से परेशान भी हैं। पुरुष वर्ग में स्त्री वर्ग को सदियों से इस प्रकार ढाला कि वे अपने स्त्रीत्व के गुणों को त्याग न सकी, केवल घर की चारदीवारी के अंदर ही कैद होकर रह गई। स्त्री वर्ग को स्त्रीत्व होने का बोध कराना और बच्चे पैदा करने की मशीन समझना पुरुष सत्तात्मक समाज का गुण बन गया है। उनके दिलो-दिमाग को ऐसे मथ दिया गया है कि सोचने समझने की शक्ति क्षीण हो गई है। उनको न स्वर्ण समाज और न ही दलित समाज ने कोई खास अधिकार दिया है। उनका समाज में कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। संतान पैदा करने से लेकर लालन- पालन करने में स्त्री वर्ग की भूमिका प्रधान होने के बावजूद भी संतान के जन्म प्रमाण पत्र,आय प्रमाण पत्र, जाति प्रमाण पत्र, निवास प्रमाण पत्र और अंक प्रमाण पत्र पर पिता का नाम पहले लिखा जाता है। सुशीला टाकभौरे स्त्री वर्ग पर हो रहे जुल्म को इस प्रकार रेखांकित करती हैं- **"समाज में स्त्रियों के प्रति यह मानसिकता सहज रुप में व्याप्त है। पितृसत्ता प्रधान भारतीय समाज में स्त्रियों को बराबरी का दर्जा नहीं दिया गया है। उनकी प्रताड़ना और शोषण को पारिवारिक और व्यक्तिगत माना गया है। स्त्रियां अपने शोषण उत्पीड़न की बातें बताएं इसे भी समाज में पुरुषों ने अच्छा नहीं माना। पुरुष चाहे जिस हाल में रहें पत्नी के सामने स्वयं को शक्ति और अधिकार संपन्न सर्वेक्षण मानते हैं इस एकाधिकार के तहत ही वह पत्नी पर जुरम करते हैं। इस प्रकार समाज पुरुष सत्तात्मक बना हुआ है।[5]"** स्त्री वर्ग के कुचले जाने, बलात्कार होने, शिक्षा, संपत्ति से वंचित रखने और घरेलू हिंसा के शिकार होने के बावजूद क्या स्त्री वर्ग खुलकर सामने आएगी या पुरुष सत्तात्मक समाज के हिंसात्मक व्यवहार को चुपचाप सही रहेगी। इसकी सही विवेचना स्त्री वर्ग ही कर सकती है। उन्हें केवल अपने उपभोग की वस्तु समझता है। गुड़िया भीतर गुड़िया में मैत्री पुष्पा अपने डॉक्टर मित्र से बात करते हुए पति की मानसिकता को इस तरह व्यक्त करती हैं- **"कुछ तो हुआ था, लेकिन गजब नहीं हुआ था।[6]"** इससे पुरुष मानसिकता की पड़ताल की जा सकती है। यह समझा जा सकता है कि वह स्त्री को लेकर कैसी सोच रखता है? शहरों में खुले बार और होटलों में पैसे की चमक आंखों को चकाचैंध कर रही है तो वहीं दूसरी तरफ गरीब जनता सड़कों के किनारे सो रही है। इस बात को यदि अदम गोंडवी के शब्दों में से व्यक्त करें तो- **"सौ में सत्तर आदमी फिलहाल जब नाशाद है, दिल पर रखकर हाथ कहिए देश क्या आजाद है।[7]"** देश की सुविधाओं पर केवल अमीरों का कब्जा है। देश की बड़ी आबादी मूलभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा, मकान, चिकित्सा और शिक्षा के लिए जूझ रही है। बाजारीकरण और निजीकरण ने अमीरों को और अमीर, गरीबों को और गरीब बना दिया है। बाजार ने स्त्री वर्ग को भाई, पिता और पति के घर से मुक्ति तो दिलाई है लेकिन बाजार में लाकर कम दाम में बिकने के लिए खड़ा कर दिया है। जिसका जीता जागता चित्रण मोहनदास नैमिशराय के उपन्यास 'आज बाजार बंद है' में स्पष्ट देखा जा सकता हैं। इतने घोर यातनाओं को सहते हुए भी दलित समाज अपने कार्य को बखूबी निभा रहा है और अपने कर्म के बल पर सारी सुख सुविधाओं को प्राप्त करने में लगा हुआ है। वह श्रम प्रधान समाज है और श्रम की महत्ता को जानता है। वह कायर, कामचोर समाज पर व्यंग भी करता है-

"करके खुदी को दूर खुद मजदूर बनकर देख।
दो-चार दिन के वास्ते अछूत बनकर देख।
सिर पर जरा रख टोकरा मेले का टपकता।
गंदगी में बढ़ जरा मल-मूत्र बन के देख।[8]"

इस वर्ग की अपनी अलग भाषा एवं संस्कार हैं, जो समाज के यथार्थ रूप को दर्शाती है। इनकी भाषा किसी भी अलंकार, रस, छंद के व्याकरणिक बन्धनों में बँधी न होकर लोकजन की भाषा के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी भाषा में उनके जीवन का मूल रूप दिखाई देता है। दलित साहित्य की भाषा भोगे हुए यथार्थ के परिणाम स्वरुप निर्मित हुई है जिसमें उनके आसपास और अपने परिवेश के दुख-दर्द को आत्मसात कर उसे सहज, सरल और बोधगम्य बनाया है। जिसे आम जनमानस आसानी से समझ सके। उसे आत्मसात कर सकें। उसे यह बिल्कुल भी महसूस न हो कि उस पर भाषा के द्वारा किसी साम्राज्य को थोपा जा रहा है बल्कि वह महसूस करें कि यह हमारी ही भाषा है। डॉ कर्दम का कहना है कि- **"साहित्य का असली सौंदर्य इस बात में नहीं है कि उसकी भाषा कितनी प्रांजल है। शिल्प कितना उत्कृष्ट है या उसकी कलात्मकता कितनी उच्च कोटि की है। बल्कि उसका असली सौंदर्य इस बात में है कि वह जीवन से कितना जुड़ा हैं।[9]"** जबकि ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित साहित्य की भाषा के संबंध में लिखते हैं कि- **"दलित साहित्य संस्कृतनिष्ठ परंपरागत साहित्यिक भाषा, काव्य शैली, प्रस्तुतीकरण को नकार कर सर्वग्राही भाषा का प्रयोग किया है। ऐसी भाषा जो दलितों की पीड़ा, अपमान, व्यथा की सही और यथार्थवादी अभिव्यक्ति बन सके। दलित साहित्य की भाषा नकार और विरोध की भाषा है जिसमें युगों की यातनाएँ साकार हो उठी है।[10]"**

निष्कर्ष के रूप कह सकते है कि इनकी भाषा का शब्द भंडार व्यापक है। यदि इसे शिष्ट साहित्य के शब्दकोश में सम्मिलित कर लिया जाए तो निश्चित ही उसकी शब्दावली विस्तृत होने के साथ-साथ अधिक रोचक, लोकानुकूल और भावानुकूल बन सकती है लेकिन उनकी शब्दावली में समाज के गाली गलौझ, अपशब्द, देहाती शब्दों की भरमार है जिसे सवर्ण साहित्यकार नकार की दृष्टि से देखते हैं और साहित्य के अनुकूल नहीं समझते हैं। सवर्ण साहित्यकार जिसे नकार की दृष्टि से देखते हैं, वही भाषा दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र है। इनकी भाषा के द्वारा श्रम की महत्ता को समझा जा सकता है। इनकी भाषा सामूहिकता का बोध कराती है। आपसी भाईचारा, सौहार्द, संगठन इत्यादि का भाव इनकी भाषा में झलकता है। इनकी भाषा निश्चित ही नवीन लोक के ज्ञान-विज्ञान, समाज, दर्शन, इतिहास का घोतक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

पीली छतरी वाली लड़की-उदय प्रकाश, पृष्ठ संख्या-14, संस्करण-2014, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
छतरी-ओमप्रकाश वाल्मीकि, प्रथम संस्करण-2013, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
छतरी-ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ संख्या-21, संस्करण-2013, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
मुर्दहिया-डॉ. तुलसीराम, पृष्ठ संख्या-11, संस्करण-2010, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद।

मूकजनों की वाणी : भारतीय दलित साहित्य, संपादक- सोमा बंधोपाध्याय, पृष्ठ संख्या-172, संस्करण-2017, साहित्य भंडार, इलाहाबाद।

गुड़िया भीतर गुड़िया-मैत्री पुष्पा, पृष्ठ संख्या-12, संस्करण-2009, राजकमल प्रकाशन इलाहाबाद।

समय से मुठभेड़-अदम गोंडवी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

दलित विमर्श एवं हिंदी दलित काव्य, संपादक-प्रोफेसर कालीचरण स्नेही, पृष्ठ संख्या-7, प्रकाशक- न्यू रॉयल बुक डिपो, लखनऊ।

दलित विमर्श : साहित्य के आईने में, डॉक्टर जयप्रकाश कर्दम, पृष्ठ संख्या-16, संस्करण-2009, प्रकाशन-साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश।

दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ संख्या-81, संस्करण-2015, प्रकाशन- राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।